को उभारा है। वे कहते हैं कि स्नेह का मार्ग इतना सीधा है कि उसमें [illegible] प्रकार के सयानेपन (सांसारिक व्यवहार बुद्धि) की वक्रता को कोई स्थान [illegible] है। उस मार्ग पर सच्चे स्नेही ही चल सकते हैं जिन्होंने अपनेपन के [illegible] (अहंकार को) पूरी तरह छोड़ दिया है। जो कपटी हैं, अतः निःशंक [illegible] वे उस सीधे मार्ग पर चलते हुए झिझकते हैं। वे वक्रता के अभ्यस्त हैं, [illegible] इस सहज-सरल मार्ग पर चल ही नहीं सकते।

शब्द और अर्थ के चमत्कार के प्रति पूर्ण सजग कवि प्रेममार्ग और [illegible] पर चलने वालों की विशेषता बताने के बाद आत्मपरकता का विश्वास [illegible] है। प्रिया प्रिय को संबोधित करती हुई कह रही है कि हे सघन आनन्द [illegible] वाले और सब कुछ अत्यन्त कुशलता से समझनेवाले सुजान प्रिय (तुम [illegible] जानते हो, फिर भी कहना इसलिए पड़ता है कि तुम जानते कुछ और [illegible] आचरण कुछ और करते हो) सुनो यहाँ (इत) इस प्रेममार्ग में केवल [illegible] अंक है। दूसरा अंक है ही नहीं। (यहाँ अपने व्यक्तित्व को प्रिय के व्यक्तित्व से अलग रखने की बात चल ही नहीं सकती। कबीर का ढाई आखर [illegible] के यहाँ एक अंक में सिमट आया है।) यहाँ दोनों एक बिंदु पर सिमट [illegible] हैं। अतः चालाकी (जैसी तुम्हारे पास है) यहाँ नहीं चलने वाली। [illegible] प्रिय सब का मन ले लेता है, अपना किसी को नहीं देता। (लै ही रहे [illegible] मन और को दैबो न जानत रामदुलारे) इसकी ओर संकेत करती हुई [illegible] कहती है कि रे लला (क्रीड़ाप्रिय) कौन सी पाटी तुमने पढ़ी है (यह चतुराई कहाँ सीखी है तुमने) कि दूसरे का मन लेकर अपना छटांक भी नहीं देते [illegible]

'लला' के स्थान पर 'कहौ' पाठ भी है। अर्थ में इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता किन्तु 'लला' से नाटकीयता बढ़ जाती है क्योंकि यह प्रिय के खिलंदड़ेपन और प्रेमिका के उच्छल अनुराग का सूचक है।

मन लेकर छटांक न देने की जो कुशल चतुरता प्रिय के पास है वह प्रेम के क्षेत्र में नहीं होनी चाहिए, यही संकेत है। चमत्कार 'मन' के श्लेष पर आधारित है। छटांक का अर्थ एक सेर का सोलहवां भाग है। प्रणय के क्षेत्र में शोभा (छटा) का अंक (झलक) न देने का संकेत।

घनानंद का यह अति प्रसिद्ध छंद है प्रेममार्ग की विलक्षणता निष्कपट चित्त का पूर्ण समर्पण ही यहाँ अभीष्ट है। अन्तिम पंक्ति में मन (चालीस सेर, श्लेष) लेकर छटांक (एक सेर का सोलहवां भाग, श्लेष : छटा का अंक एक झलक) तक न देने वाले चतुर खिलंदड़े प्रिय को उपालंभ। 'प्रेम की पीर' में परिपूरित लेनेदेन पर नहीं है, इस पर है कि प्रेम के क्षेत्र में यह चतुराई उचित नहीं।

संकलित अन्तिम छंद में पुनः घनानंद के विरह की एक प्रतिक्रिया दिखाई है कि प्रिय जब निर्मोही हो जाए, तो प्रेमी के पास भाग्य को कोसने के सिवा अन्य कोई चारा नहीं रह जाता। चतुर सुजान या प्रिय से ठगे जाने के बाद निराश प्रेमी की इसी प्रकार की दयनीय मानसिकता का चित्रण करते हुए कवि घनआनन्द कह रहे हैं।

हे प्रिय! जब मेरा अपना मन और प्राण ही मेरा दुश्मन बनकर मुझे मार डालने पर तुल गया है, तो ऐसी दशा में तुमसे यदि शिकायत की भी जाए, तो कैसी और क्यों कर? अर्थात तब तुम्हारा कोई दोष नहीं, यही मानना और कहना पड़ता है। हे प्रिय! तुमने तो आँख की पहचान तक त्याग दी है, अर्थात मुझे पहचानने तक से इनकार कर दिया है, ऐसी दशाएँ प्रेमी कहना या मानना तो दूर की बात है। यह देख सुनकर लगता है कि मेरे भाग्य में तुम्हारे साथ ऐसा ही लेना-देना लिखा था। अर्थात तुम्हें प्रेम करके भी बदले में तुमसे अनपहचान पाना ही मेरे भाग्य में लिखा था, सो मिल गया है। घनआनन्द कवि कहते हैं कि जब मन और जीवन में केवल तुम्हारा प्रेम ही सब कुछ है, वही जीने की आशा भी है; तब निराश होकर जीवन जीने से क्या लाभ? अरे, तुम तो चतुर सुजान हो, सब कुछ भली प्रकार से समझते और जानते हो। तुम मेरे प्रेम को अच्छी प्रकार जान कर भी जो इस तरह जान-बूझ कर अनजान बन रहे हो; तो लगता है कि बिना आग के भी हमें अब जलते ही रहना है अर्थात तुम्हारे विरह की आग में जल-जलकर जिए जाना ही अब मेरा भाग्य बन चुका है। अन्य किसी तरह का कोई चारा या उपाय नहीं है।

अतः घनानंद के ये पद एक ओर जहाँ उनकी विरह व्यथा, अतृप्त प्रेम की अभिव्यक्ति हैं। वहीं उनकी एकनिष्ठ, आदर्श और प्रेम की तीव्रता के सूचक हैं। सहज, स्वाभाविक भाषा में ये भाव और भी मर्मस्पर्शी, प्रभावी और जीवंत हो उठे हैं। हाँ, इनको जानने नहीं, महसूस करने के लिए 'हृदय की आँख' का होना बहुत जरूरी है।

Scanned with CamScanner

अपने प्रवासी प्रिय की असाधारण विशेषताएँ बताती हुई कहती है कि (प्रिय को ढूँढ़ना कठिन नहीं है क्योंकि) वे सुजान हैं। जगत में उनका यश प्रकाशित है (उजियारे)। वे भारी गुणों वाले हैं। (तुम जब उनके पास पहुँचोगे तो मेरे पास से आया जानकर वे तुम्हारा सत्कार करेंगे क्योंकि) वे अन्तत: (या अन्तःकरण के) मोही हैं। वे अत्यन्त प्यारे स्वभाव के हैं(यह समय की बात है कि इस समय) अमोही (मोहरहित) होकर पिछली पहचान (प्रीति) को पीठ देकर (भुलाकर) परदेश में जा बैठे हैं।

'अन्त मोही' का अर्थ अन्यत्र मोह में पड़ा हुआ, किया जाता है। घनानंद जिस गम्भीर प्रेम के समर्थक हैं उसमें इस तरह के लांछन को स्थान नहीं है, साथ ही अन्यत्र 'अंत' का स्वाभाविक अर्थ भी नहीं है। एक मार्मिक संकेत यह भी है कि उन्होंने मुझसे मोह किया है और अन्त तक करेंगे। यही विश्वास विरहिणी की आशा का आधार है।

अन्त में वह पवन से प्रार्थना करती है कि प्रिय के पाँवों की थोड़ी सी धूल अपने साथ उड़ाकर ला दे तो वियोग से जलती आँखों में जुड़ा लूँगी। विरह-व्यथा की औषध यह धूल ही है (बिरह-बिथाहि मूरि)। साधारणत: आँखों में धूल पीड़ा पहुँचाती है किन्तु यहाँ प्रिय के साहचर्य को पाने वाली किसी भी वस्तु की कामना इतनी तीव्र है कि उसको आँखों में भर लेने से विरहिणी की आँखों की पीड़ा दूर हो जाएगी।

'बिरह-बिथाहि मूरि' : इस पद की व्याख्या धूल (प्रिय के पाँवों की) के रूप में की जाती है, किन्तु इस पूरे पद को वियोगिनी आँखों का विशेषण मान लें तो और महत्वपूर्ण अर्थ निकलता है। ये आँखें ही विरह व्यथा की जड़ (मूरि) है। प्रिय के रूप के प्रति आसक्ति इन्हीं आँखों के माध्यम से उत्पन्न हुई है। इसलिए ये आँखें अधिक दुखी हैं, साहचर्य लिप्सा इन्हीं को सबसे अधिक है। सूर जी की गोपियाँ भी यही कहती हैं– 'इन नैना बिरह की बेलि बई'।

चौथे छंद में घनानंद की पीड़ा अतिरेक पर दिखती है। घनानंद की जीवात्मा अपनी प्रियसी सुजान के लिए तड़पती, बिलखती, रोती दिखती है। उनकी वियोगिनी आत्मा बादल को समर्थ परोपकारी बताती हुई प्रार्थना करती है कि जानबूझकर विश्वासघात करने वाले प्रिय के आँगन में कभी उसके आँसुओं को ले जाकर बरसा दे। वियोगिनी (घनानंद) मेघ से कहती है कि तुम केवल दूसरों का काम करने के लिए शरीर धारण करके घूमते हो और इसलिए अपना परजन्य नाम (दूसरों के लिए जन्म लेने वाला) सार्थक करते हो अर्थात तुम 'परजन्य' के रूप में यथार्थ ही दिखाई देते हो। (बादल दूसरों के लिए जो कुछ करता है उसको स्मरण करती हुई घनानंद की जीवात्मा कहती है) समुद्र के खारे जल को लेकर उसे तुम अमृत के समान शीतल और सुस्वादु बना देते हो। तुम सभी प्रकार की सज्जनता को सरस करते हो अर्थात सबके मन में (अपने प्रति) सज्जनता के प्रभाव का संचार करते हो। तुम आनन्द के बादल हो (तुमसे आनन्द बरसता है) संसार (के प्राणियों) को जीवन का दान करने वाले हो (जीवन में उत्तम श्लेष, शब्द के स्तर पर भी और अर्थ के स्तर पर भी। बादल जीवनदायक है) (जब तुम सबकी पीड़ा समझकर सबको जीवनदान करते हो तो) मेरी पीड़ा का किंचित स्पर्श भी करो अर्थात कुछ तो मेरी पीड़ा का अनुमान करो (बिना भोगे जान तो सकते नहीं, अत: थोड़ा आभास ही पा लो।) उसे विश्वास है कि बादल का हृदय द्रवणशील है। इसीलिए अपनी दशा की ओर संकेत करने के लिए कहती है कि कभी तो हे मेघ! तुम मेरे आँसुओं को ले जाकर उस विश्वासघाती सुजान के आँगन में बरसा दो। प्रिय के आँगन में अपने आँसुओं को बरसाने की प्रार्थना में कई महत्वपूर्ण संकेत हैं। समुद्र के खारे जल को अमृतोपम बना देने वाला बादल उसमें खारे उष्ण आंसुओं को भी वैसा ही बना देगा जिससे सम्भव है वह कठोर प्रिय अनुकूल हो जाए। दूसरी ध्वनि है, प्रत्यक्ष नहीं तो आंसुओं के माध्यम से ही प्रिय का साहचर्य लाभ हो जाए। जायसी ने भी 'पदमावत' में ऐसी ही कामना की है–

'यह तन जारौं छार कै कहौं कि 'पवन' उड़ाव
मकु तेहि मारग उड़ि परौं कंत धरे जहं पांव'

घनानंद के इस छंद में प्रिय को शीतलता पहुँचाने की कामना भी ध्वनित है। घनानंद ने सुजान को विश्वासघाती इसलिए कहा है क्योंकि वह सुजान (सब कुछ जानने वाला) है। इसीलिए विश्वासघाती होने की बात प्रमाणित है। अगर वह अजान होता तो भूल से भी ऐसा कर सकता था, किन्तु वह सुजान है फिर भी ऐसा करता है तो निश्चित ही उसकी नीयत में खोट है। पाँचवें छंद में घनानंद ने प्रेम के मार्ग की सहजता, सरलता को बताते हुए अप्रत्यक्षत: उसकी क्लिष्टता

अपने तुम्हारे प्रेम और न्यौछावर कर दिया। हे सुजान प्रिय! अब संकोच त्याग कर मेरे चिन्ता भरे मन को सहारा दो। अर्थात मेरे प्रेम का प्रतिपादन चुकाकर मेरी चिन्ता दूर करो। घनआनन्द कहते हैं, कि तुम्हें नहीं मालूम की मेरी आँखें तुम्हारी रीझ के आगे बिक गई हैं। अब मेरी आँखें भी मेरी नहीं है।

दूसरे छंद में घनानंद ने अपने प्रेम भाव के साथ-साथ अपनी प्रेमिका सुजान के द्वारा पहनी गई श्यामल साड़ी के सौन्दर्य को बिम्बित किया है। सुजान श्यामल साड़ी में लिपटी ऐसी लग रही है जैसे काली घटा लिपटी हो। उसके नेत्र धुँए की भाँति स्लेटी रंग के है और उसमें मादकता का लाल रंग भी शोभायमान है। ये आँखें ऐसी लगती हैं जैसे धुँए के गुबार में ज्वाला जल रही हो लेकिन ये ज्वाला दग्ध करने के स्थान पर शीतलता प्रदान करती है, सुख देती है। घनानंद ऐसे सौन्दर्य की छवि को निहार निहार कर आनन्द मग्न रहते हैं, रहना चाहते हैं।

तीसरे छंद में घनानंद की विरह भावना, पीड़ा का वर्णन है, जहाँ घनानंद की अभिलाषा प्रवासी प्रिय का संधान करके उनके चरणों की धूल ला देने में समर्थ पवन से विरहिणी प्रार्थना कर रही है। संशोधन में ही उत्तम श्लेष है। हे भाई पवन (वीरतापूर्ण कार्य करने वाले, समर्थ) तुम्हारी सर्वत्र गति है। दुःसाध्य कार्य करने के लिए बीड़ा उठाने वाला (बीरी) भी तुम समान कोई और नहीं है। (अनन्वय) बस, तुम द्रवित होने की आदत (ढरकौहीं बानि) डाल लो। (मेरी करुण दशा के प्रति द्रवित हो जाओ तो तुम्हारे मार्ग में कोई बाधा नहीं आ सकती, जिसे तुम पारन कर लो। तुम सर्वत्र गति वाले हो अतः प्रिय तक पहुँच ही जाओगे। बीड़ा उठाने की आदत तुमको है ही।) भाई पवन को दुःसाहसी, सर्वत्र गतिवाला और द्रवणशील चित्त का बताने के बाद उसके स्वभाव की कुछ और विशेषताओं का स्मरण कराती हुई विरहिणी कहती हैं कि तुम जगत के प्राण हो (तुम्हारे ही माध्यम से सभी प्राणी प्राण धारण करते हैं। अतः मेरे प्राणों के पोषण का उपाय भी अवश्य करोगे।) इतना ही नहीं तुम 'समदरसी' भी हो। छोटे-बड़े सबको समान रूप से उपकृत करते हो। (मुझ में अपात्रता हो तो भी तुम मुझ पर दया करोगे।) तुम सघन आनन्द के संपुंज हो (तो मुझ विरहिणी को पल भर का आनन्द भी अवश्य दोगे), दुखियों को सुख देना तुम्हारा स्वभाव है। पवन की विशेषताएँ बताने के बाद विरहिणी

Scanned with CamScanner

पदों का प्रतिपाद्य

घनानंद स्वच्छंदतावादी काव्यधारा के उन कवियों में है जिनकी प्रेमानुभूति ईश्वरीय प्रेम की गरिमा से किसी तरह भी हल्की नहीं है। घनानंद ने पूरे आवेश के साथ मानवीय प्रेम का सुख-दुख भोगा। उसके बाद उन्होंने भक्ति के दिव्य आनन्द का अनुभव किया घनानंद ने अपने को सुजान के हाथों में सौंप दिया। उसके पाँवों के नीचे अपने मन को पायदान की तरह बिछा दिया था, उसी घनानंद ने भक्ति मार्ग में दीक्षित होकर राधाकृष्ण का अभिन्न साहचर्य और अतिशय प्रगाढ़ विश्वास भी अर्जित किया। ऐसे प्रेमी और भक्त घनानंद के संकलित इन छंदों में एक ओर जहाँ शुद्ध प्रेमी का रूप दिखेगा तो दूसरी ओर उनकी भक्तमयी छवि भी।

पहला छंद घनानंद ने सुजान के रूप सौन्दर्य को वर्णित करते हुए लिखा है जो सौन्दर्य क्षणिक नहीं है शाश्वत है। पल पल परिवर्तित होने वाला है। उसमें घनानंद की प्रेमी दृष्टिही उस सौन्दर्य का पान करके भी अघाती नहीं है। वस्तुतः प्रेमी जनों के प्रेम की आन कभी भी हार मानना नहीं जानती। सर्वस्व न्यौछावर करके भी वह प्रिय को ही पाना चाहती है। कुछ इसी प्रकार के भाव और प्रेमी जनों की अकाट्य मर्यादा का वर्णन करते हुए प्रेमी कवि घनानंद का कहना है कि हे प्राण प्रिय! तुम्हारे रूप सौन्दर्य की यह अनोखी रीति और परम्परा देखी है कि उसे जब-जब और जहाँ-जहाँ भी देखों, पहले की तुलना में वह हमेशा कहीं अधिक गया, कहीं अधिक सुन्दर एवं आकर्षक प्रतीत होता है। अर्थात प्रिय का रूप-सौन्दर्य दिन एवं आयु के बीतने के साथ-साथ घटने की बजाय निरन्तर बढ़ता और निखरता ही जाता है। यह उसके रूप सौन्दर्य की एक अनुपम विशेषता है। कवि कहता है, हे प्रिय! जिस प्रकार तुम्हारे रूप को नित नया होते जाने की आदत है, उसी प्रकार मेरी इन आँखों को भी यह अनुपम आदत पड़ गई है कि यह तुम्हें छोड़कर अन्य किसी को भी देखकर कभी तृप्ति एवं सन्तोष नहीं पाती। अर्थात बार-बार तुम्हें देखकर सन्तुष्ट होने की पक्की एवं अनोखी मेरी इन आँखों को भी पड़ गई है। मेरे पास तो मेरा एक ही मन-प्राण था, वह

Scanned with CamScanner